COHERENCE – The Multidisciplinary Research Journal
Volume No: 14, Issue No: 2, Year: 2023 (July-December)
PP: 33-37
ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

बिहार में दलित राजनीति का उदय: सामाजिक न्याय आंदोलन, नेतृत्व और जनभागीदारी का विश्लेषण

सरोज कुमार यादव

विश्वविद्यालय राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सार

बिहार में दलित राजनीति का उदय केवल चुनावी प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह सामाजिक सम्मान, संसाधनों तक पहुँच, भूमि-संबंधों, जातिगत हिंसा, आरक्षण, नेतृत्व-निर्माण और लोकतांत्रिक भागीदारी से जुड़ा व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन है। इस शोध-पत्र में द्वितीयक आँकड़ों और उपलब्ध राजनीतिक-सामाजिक अध्ययनों के आधार पर बिहार में दलित राजनीति के विकास का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बिहार में दलित राजनीति का प्रारंभिक रूप जातीय संगठनों, अस्पृश्यता-विरोधी अभियानों और कांग्रेस-कालीन प्रतिनिधित्व से जुड़ा था, परंतु 1990 के बाद मंडल राजनीति, सामाजिक न्याय की भाषा और पिछड़ा-दलित गठबंधनों ने इसे नए ढंग से परिभाषित किया। रामविलास पासवान, जीतन राम मांझी, जगजीवन राम और अन्य दलित नेतृत्वों ने दलित प्रतिनिधित्व को राज्य तथा राष्ट्रीय राजनीति से जोड़ा। फिर भी दलित राजनीति में उपजातीय विभाजन, आर्थिक वंचना, सीमित स्वतंत्र राजनीतिक आधार और आरक्षित सीटों तक प्रतिनिधित्व के सीमित हो जाने जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। सांख्यिकीय विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि बिहार में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या हिस्सेदारी और विधानसभाई आरक्षण के बीच अंतर है, जबकि गरीबी, शिक्षा और सरकारी नौकरी में उनकी स्थिति राज्य औसत से कमजोर है। अतः बिहार में दलित राजनीति का वास्तविक सशक्तीकरण केवल प्रतीकात्मक नेतृत्व से नहीं, बल्कि शिक्षा, भूमि-सुधार, स्थानीय शासन, आर्थिक भागीदारी और नीतिगत प्रतिनिधित्व के गहरे विस्तार से संभव है।

मुख्य शब्द: दलित राजनीति, बिहार, सामाजिक न्याय, जनभागीदारी, नेतृत्व, आरक्षण, सामाजिक-आर्थिक वंचना।

1. प्रस्तावना

बिहार की राजनीति में जाति केवल सामाजिक पहचान नहीं रही, बल्कि सत्ता-संसाधनों के वितरण, राजनीतिक लामबंदी और जनभागीदारी का केंद्रीय आधार रही है। दलित राजनीति का विकास इसी ऐतिहासिक संदर्भ में समझा जाना चाहिए। बिहार में दलित चेतना का प्रारंभ 20वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में जातीय संगठनों, अस्पृश्यता-विरोधी आंदोलनों और सामाजिक सम्मान की माँगों से हुआ। हितेंद्र के. पटेल के अध्ययन के अनुसार 1913 से 1952 के बीच बिहार में दलित राजनीतिक सक्रियता जातीय संघों, सामाजिक अभियानों और जगजीवन राम जैसे नेताओं के माध्यम से विकसित हुई [1]।

स्वतंत्रता के बाद दलित प्रतिनिधित्व संवैधानिक आरक्षण के माध्यम से संस्थागत हुआ, किंतु सामाजिक-आर्थिक असमानताओं ने दलित राजनीति को केवल प्रतिनिधित्व की राजनीति तक सीमित नहीं रहने दिया। 1990 के दशक में मंडल राजनीति के उदय ने बिहार में सत्ता-संरचना को ऊँची जातियों के प्रभुत्व से हटाकर पिछड़े वर्गों और आंशिक रूप से दलित समूहों की ओर मोड़ा [2]। यह परिवर्तन लोकतंत्र के सामाजिक आधार को विस्तृत करता है, परंतु दलितों की स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति अपेक्षाकृत सीमित रही, क्योंकि कई बार दलित मुद्दे व्यापक पिछड़ा राजनीति के भीतर समाहित हो गए [3]।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

2. उद्देश्य और कार्यप्रणाली

इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य हैं: बिहार में दलित राजनीति के ऐतिहासिक उदय का अध्ययन करना; सामाजिक न्याय आंदोलन और दलित नेतृत्व की भूमिका का विश्लेषण करना; जनभागीदारी, आरक्षण और निर्वाचन प्रतिनिधित्व के संबंध को समझना; तथा सामाजिक-आर्थिक आँकड़ों के आधार पर दलित राजनीति की सीमाओं और संभावनाओं का मूल्यांकन करना।

अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। इसमें जनगणना, बिहार जाति-आधारित सर्वेक्षण, सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना, निर्वाचन आयोग, परिसीमन आदेश, तथा विद्वानों के अध्ययनों का उपयोग किया गया है। सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए प्रतिशत, अनुपात, अंतर और प्रतिनिधित्व-सूचकांक का प्रयोग किया गया है।

3. बिहार में दलित राजनीति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

बिहार में दलित राजनीति का प्रारंभ औपनिवेशिक काल में सामाजिक सम्मान और अस्पृश्यता-विरोधी संघर्षों से जुड़ा था। पटेल ने स्पष्ट किया है कि बिहार में दलित सक्रियता ने 1913 के बाद जातीय संगठनों के माध्यम से आवाज उठाई और 1952 के पहले आम चुनाव तक दलित नेताओं ने कांग्रेस नेतृत्व पर दबाव बनाकर अधिकारों की माँग रखी [1]। इस समय दलित राजनीति का केंद्रीय स्वर राजनीतिक सत्ता से अधिक सामाजिक सम्मान, शिक्षा, मंदिर-प्रवेश, सार्वजनिक संसाधनों के उपयोग और जातिगत अपमान से मुक्ति पर केंद्रित था।

स्वतंत्रता के बाद जगजीवन राम बिहार से राष्ट्रीय स्तर पर दलित नेतृत्व के प्रमुख प्रतीक बने। उन्होंने दलित राजनीति को प्रशासनिक प्रतिनिधित्व और संसदीय लोकतंत्र से जोड़ा। किंतु बिहार में दलित राजनीति उत्तर प्रदेश की बहुजन राजनीति की तरह स्वतंत्र दलित पार्टी-आधारित आंदोलन में परिवर्तित नहीं हो सकी। इसका कारण यह था कि बिहार में भूमि-संबंध, ग्रामीण हिंसा, बटाईदारी, मजदूरी और पिछड़ा-दलित संबंधों की जटिलता ने दलित राजनीति को वर्गीय और जातीय दोनों संघर्षों में बाँधे रखा [4]।

4. सामाजिक न्याय आंदोलन और दलित राजनीतिक उभार

1990 के बाद बिहार में सामाजिक न्याय की राजनीति ने सत्ता-समीकरण को निर्णायक रूप से बदला। लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में पिछड़ा-मुस्लिम-दलित गठबंधन का राजनीतिक विमर्श विकसित हुआ। जेफ्रेलो के अनुसार उत्तर भारत में निम्न जातियों का राजनीतिक उभार लोकतंत्र के सामाजिक विस्तार का संकेत था [2]। विटसो के अध्ययन में बिहार की चुनावी राजनीति को क्षेत्रीय प्रभुत्व, जाति-संबंध और स्थानीय लोकतांत्रिक नेटवर्क से जोड़ा गया है [3]।

फिर भी दलित राजनीति का प्रश्न यहाँ जटिल है। सामाजिक न्याय आंदोलन ने दलितों को भाषाई और प्रतीकात्मक स्थान दिया, परंतु नेतृत्व-स्तर पर यादव, कुर्मी, कोइरी और अन्य पिछड़ी जातियों का प्रभुत्व अधिक दिखाई दिया। इसी कारण दलित राजनीति की स्वतंत्र दिशा रामविलास पासवान की लोक जनशक्ति पार्टी और बाद में जीतन राम मांझी की हिंदुस्तानी आवाम मोर्चा जैसी संरचनाओं में दिखाई देती है। पासवान ने दुसाध/पासवान समुदाय के साथ व्यापक दलित पहचान को जोड़ने का प्रयास किया, जबकि मांझी ने महादलित, विशेषकर मुसहर समुदाय की राजनीतिक दृश्यता बढ़ाई।

5. जनसंख्या, प्रतिनिधित्व और आर्थिक स्थिति का सांख्यिकीय विश्लेषण

बिहार जाति-आधारित सर्वेक्षण के अनुसार राज्य में अनुसूचित जातियों की हिस्सेदारी 19.65% बताई गई है, जबकि अनुसूचित जनजातियों की हिस्सेदारी 1.68% है [5]। 2008 के परिसीमन आदेश के अनुसार बिहार विधानसभा में कुल 243 सीटों में 38 सीटें अनुसूचित जातियों और 2 सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित हैं [6]।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

तालिका 1: बिहार में दलित जनसंख्या और प्रतिनिधित्व

सूचक	आँकड़ा
बिहार की कुल विधानसभा सीटें	243
अनुसूचित जाति आरक्षित सीटें	38
अनुसूचित जाति सीटों का प्रतिशत	15.64%
जाति-आधारित सर्वेक्षण में अनुसूचित जाति जनसंख्या	19.65%
प्रतिनिधित्व-अंतर	-4.01 प्रतिशतांक
प्रतिनिधित्व-सूचकांक	0.80

प्रतिनिधित्व-सूचकांक = आरक्षित सीटों का प्रतिशत ÷ जनसंख्या प्रतिशत = 15.64 ÷ 19.65 = 0.80। इसका अर्थ है कि जनसंख्या हिस्सेदारी की तुलना में विधानसभाई आरक्षण अनुपात कम है। यह अंतर परिसीमन की पुरानी जनगणना-आधारित संरचना से जुड़ा है।

बिहार जाति-आधारित आर्थिक आँकड़ों में अनुसूचित जाति परिवारों में गरीबी का अनुपात 42.93% बताया गया, जबकि राज्य-स्तर पर गरीबी का अनुपात 34.13% था [5]। इसी प्रकार स्नातक शिक्षा में अनुसूचित जातियों की हिस्सेदारी 3.12% और सरकारी नौकरी में 1.13% बताई गई, जो राज्य औसत से कम है [5]।

तालिका 2: सामाजिक-आर्थिक असमानता का संकेतक विश्लेषण

सूचक	राज्य औसत	अनुसूचित जाति	अंतर	अनुपात
गरीब परिवार	34.13%	42.93%	+8.80	1.26
स्नातक शिक्षा	6.47%	3.12%	-3.35	0.48
सरकारी नौकरी	1.57%	1.13%	-0.44	0.72

यह तालिका बताती है कि दलित राजनीति का आधार केवल पहचान नहीं, बल्कि आर्थिक बहिष्करण है। गरीबी में अनुसूचित जाति परिवारों का अनुपात राज्य औसत से 26% अधिक है। स्नातक शिक्षा में उनका अनुपात राज्य औसत का लगभग आधा है। सरकारी नौकरी में भी उनकी उपस्थिति कम है। अतः राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता के बीच अंतर स्पष्ट है।

6. नेतृत्व, उपजातीय आधार और जनभागीदारी

बिहार में दलित नेतृत्व का स्वरूप बहुस्तरीय है। जगजीवन राम राष्ट्रीय संस्थागत नेतृत्व के प्रतीक थे। रामविलास पासवान ने दलित राजनीति को गठबंधन-राजनीति और केंद्रीय सत्ता में भागीदारी से जोड़ा। जीतन राम मांझी ने महादलित विमर्श को मुख्यमंत्री पद तक पहुँचाया। यह नेतृत्व-दिशा महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे दलित समुदायों की राजनीतिक दृश्यता बढ़ी।

परंतु दलित राजनीति में उपजातीय विभाजन एक महत्वपूर्ण चुनौती है। पासवान/दुसाध, रविदास/चमार, मुसहर, पासी और अन्य दलित समूहों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति समान नहीं है। 2023 के जाति-आधारित आँकड़ों में दुसाध/पासवान और रविदास/चमार प्रमुख दलित समूहों के रूप

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

में दिखते हैं, जबकि मुसहर समुदाय अत्यधिक वंचना से जुड़ा हुआ है [5]। इसलिए दलित राजनीति कई बार समग्र दलित एजेंडा के बजाय उपजातीय नेतृत्व की प्रतिस्पर्धा में बदल जाती है।

जनभागीदारी की दृष्टि से पंचायत आरक्षण, महिला प्रतिनिधित्व, स्वयं सहायता समूह, श्रमिक संगठन, छात्र राजनीति और स्थानीय आंदोलनों ने दलितों की राजनीतिक सक्रियता बढ़ाई है। ग्रामीण बिहार में दलित भागीदारी केवल मतदान तक सीमित नहीं रही, बल्कि मनरेगा, राशन, आवास, विद्यालय, आंगनवाड़ी, भूमि-विवाद और पुलिस-प्रशासन तक पहुँच जैसे मुद्दों पर भी दिखाई देती है। सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना की ग्रामीण बिहार संबंधी रिपोर्टों से स्पष्ट है कि बिहार का बड़ा हिस्सा ग्रामीण है और सामाजिक वंचना का प्रश्न ग्रामीण संरचना से गहराई से जुड़ा है [7]।

7. आर्थिक दृष्टि से दलित राजनीति की सीमाएँ

अर्थशास्त्रीय दृष्टि से दलित राजनीति की सबसे बड़ी सीमा यह है कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व आर्थिक संसाधनों में समान रूप से परिवर्तित नहीं हुआ। यदि गरीबी, शिक्षा और सरकारी नौकरी को आधार बनाया जाए, तो अनुसूचित जातियों का सामाजिक न्याय अभी अधूरा है। प्रतीकात्मक नेतृत्व से आत्मसम्मान और राजनीतिक पहचान मजबूत होती है, परंतु आय, शिक्षा, भूमि, कौशल और रोजगार में परिवर्तन के बिना लोकतांत्रिक भागीदारी की गुणवत्ता सीमित रहती है।

बिहार में दलित समुदायों का बड़ा हिस्सा कृषि मजदूरी, असंगठित श्रम, प्रवासन और कम वेतन वाले कार्यों से जुड़ा है। भूमि स्वामित्व की कमी राजनीतिक निर्भरता को बढ़ाती है। इस कारण मतदान में भागीदारी अधिक होने के बावजूद नीति-निर्माण में दलित समुदायों की प्रत्यक्ष शक्ति सीमित रहती है। यही कारण है कि दलित राजनीति को केवल आरक्षित सीटों की संख्या से नहीं, बल्कि बजटीय आवंटन, शिक्षा-प्राप्ति, स्थानीय प्रशासन में पहुँच और आर्थिक गतिशीलता से मापना चाहिए।

8. निष्कर्ष

बिहार में दलित राजनीति का उदय सामाजिक न्याय आंदोलन, मंडल राजनीति, संवैधानिक आरक्षण, दलित नेतृत्व और स्थानीय जनभागीदारी के संयुक्त प्रभाव से हुआ है। इस राजनीति ने दलित समुदायों को अदृश्यता से दृश्यता की ओर, मौन से दावेदारी की ओर और सामाजिक अपमान से राजनीतिक सम्मान की ओर बढ़ाया है। फिर भी इसकी सीमाएँ स्पष्ट हैं। अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 19.65% है, पर विधानसभा आरक्षित सीटों का अनुपात 15.64% है। गरीबी, शिक्षा और सरकारी रोजगार में दलित समुदाय राज्य औसत से पीछे है। इसलिए बिहार में दलित राजनीति का अगला चरण पहचान-आधारित प्रतिनिधित्व से आगे बढ़कर आर्थिक न्याय, शिक्षा, भूमि-अधिकार, कौशल-विकास, स्थानीय नेतृत्व-निर्माण और दलित महिलाओं की भागीदारी पर केंद्रित होना चाहिए।

दलित राजनीति की वास्तविक सफलता तभी मानी जाएगी जब वह उपजातीय विभाजनों से ऊपर उठकर दलित समुदायों के भीतर सबसे वंचित समूहों को केंद्र में रखे। बिहार का सामाजिक न्याय विमर्श तभी पूर्ण होगा जब राजनीतिक प्रतिनिधित्व सामाजिक-आर्थिक समानता में बदल सके।

संदर्भ

1. एच. के. पटेल, "एस्पेक्ट्स ऑफ मोबिलाइजेशन्स ऑफ दलित्स इन बिहार, 1913–1952," *कंटेम्पररी वॉइस ऑफ दलित*, खंड 9, अंक 1, पृ. 63–72, 2017, doi: 10.1177/2455328X17692463.
2. सी. जेफ्रेलो, *इंडियाज साइलेंट रिवोल्यूशन: द राइज ऑफ द लोअर कास्ट्स इन नॉर्थ इंडिया.* न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003.

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

3. जे. विटसो, "टेरिटोरियल डेमोक्रेसी: कास्ट, डॉमिनेंस एंड इलेक्टोरल प्रैक्टिस इन पोस्टकोलोनियल इंडिया," *पॉलिटिकल एंड लीगल एंथ्रोपोलॉजी रिव्यू*, खंड 32, अंक 1, पृ. 64–83, 2009.
4. एस. पाई, *दलित असर्शन एंड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन*. नई दिल्ली: सेज, 2002.
5. बिहार सरकार, *बिहार जाति-आधारित सर्वेक्षण, 2023: जनसंख्या एवं सामाजिक-आर्थिक निष्कर्ष*, पटना, 2023.
6. भारत निर्वाचन आयोग, *डिलिमिटेशन ऑफ पार्लियामेंटरी एंड असेंबली कॉन्स्टिट्यूएंसीज ऑर्डर, 2008*, नई दिल्ली, 2008.
7. ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, *सामाजिक-आर्थिक एवं जाति जनगणना 2011: बिहार ग्रामीण रिपोर्ट*, नई दिल्ली, 2011.
8. भारत निर्वाचन आयोग, *बिहार विधानसभा निर्वाचन सांख्यिकीय प्रतिवेदन*, नई दिल्ली, विभिन्न वर्ष.
9. पी. आर. एस. लेजिस्लेटिव रिसर्च, *प्रोफाइल ऑफ द 18थ बिहार लेजिस्लेटिव असेंबली*, नई दिल्ली, 2025.
10. आर. अंकित, "कास्ट पॉलिटिक्स इन बिहार: इन हिस्टोरिकल कंटिनुअम," *जर्नल ऑफ सोशल साइंस स्टडीज*, 2017.

© Copyright @ Authors